नां करवो, ज्यारे मन मां आवे त्यारे एक परदनी पहेरी श्री मुख जोवा जईये त्यारे कांई अटकाव न थाय। एणी भांते रहेवुं पण कशो वलगाड न करवो॥ कोई एम न कहे जे पैसो देवो छे ते आपीने जा॥ १५॥ हवे जेटला काल जीविये श्रीजी राखे तेटलुं श्रीजी ने चरणे रहेवाय एहवा विचार विचारवा॥ जे देह धर्यां नुं सार्थक थाय॥ शरीर पडे तो श्री जी जमना जी ने तीरे पडे तो भलुं थाए मांटे जेम तेम सुखे दुखे श्री गोकुल वास करवो॥ १६॥ आपणुं आचरण शुं छे॥ सेवा शुं कीजिये छीये॥ आखा दहाडा मां काज पैसा नुं संभरता नथी ने श्रीजी नां लोक नो प्रसाद सामग्री माहा अमूल लीजिये छीये। आपे तो ते पण कांई उपाय करी लेवो॥ ए कोण धर्म छे अने श्रीजी नी सेवा पोते श्री अंगे करवा नुं जुओ पैसा एक भर लेता नथी ने चोकीयों उठावता एम निवृत्ता ए ऊठी दोडवुं॥ जे आगल विचारतो नथी अने तेतो ए रीत ने आणे तो ए सूत्र मांटे रूडी पेरे विचारी ने हींडो तो सारुं॥ १७॥
इति मन प्रबोध सुन्दरदास सुलतान पुरी कृत सम्पूर्णम्॥

मन प्रबोध

(व्यारा ना गोपालदास कृत)

प्रथम नमन करि नव कुंवर गोकुलेश रस राश। मम चिंता चूर हू चतुर पूरो मन नी आश॥ १॥
आश एक तुम दरश की परस परम सुख रूप। दरस परस रस दान के दाता श्री गोकुल भूप॥ २॥
एह अभिलाखा मन रहे कहूं कौन पे जाय। जीवन धन सम्पत सुखद मेरे श्री गोकुल राय॥ ३॥
चरण शीश धर चित धर उर अन्तर गति ध्यान। मन प्रबोध या ग्रन्थ को देवो कृपा करी ज्ञान॥ ४॥
सब ते चिंता अति प्रबल ताते प्रबल सुभाय। उभय उग्र को विजय कर वन्दु मृदु जुग पाय॥ ५॥
जाके मन चिंता रहे भाव सुदृढ नहीं ज्ञात। मन प्रबोध यह ग्रन्थ सुनि अबुध सुबुध ह्वै जात॥ ६॥
अलौकिक मों व्यासंग सुनी देख्यो समय विरुद्ध। मन प्रबोध करी आपते तब कर लियो विशुद्ध॥ ७॥
कब हूं अति उद्वेग मन रहतो कछु जंजाल। मन प्रबोध यह ग्रंथ तब कीनो दास गोपाल॥ ८॥
मन प्रबोध सम ग्रन्थ ए कीनो करीय प्रकाश। मन प्रकाश बोधक निपट सब ते करे उदास॥ ९॥
चरण कमल में मन रहे आन रहे नहीं आश। उद्दीपन सद्भाव करी मन को करे प्रकाश॥ १०॥
जिहि सुनि के चिंता सकल लौकिक अलौकिन शेष। कोऊ दुख व्यापे नहीं दोष रहे नहीं लेश॥ ११॥
यामें श्री मुख के वचन उपपत्य सहित अनूप। स्वकीयन कु शिक्षा निमित कहे हैं कारण रूप॥ १२॥
मन प्रबोध या ग्रन्थ कुं पढे सुने जो दास। जगत तुच्छ करि काहू की करे न कबहूं आश॥ १३॥

कवित—गुनी गन ज्ञानी कवि पण्डित विचार देखो सुनो सीख मेरी मेरो वचन निदान है।
गोकुल के नाथ गुन गाथ जो सुने प्रसिद्ध जाकी आदि मध्य सदा एक बानि है।
आदि हू ते आदि अनादि जाकों कहियत है सोई ए स्वरूप उपमा न कोऊ आन है।
उपमा अभूत अदभूत न को भावी भूत ए न काहू सम न कोई इनही समान है॥ १॥
ये स्वरूप श्री गोकुलेश जी को यथारथ जान्यो और आन्यो मन मांझ मन वच क्रम करिके।
प्रणय सहित रस भाव परमा विधि स्वरूप रस पान कियो नैनन भरि भरि के।

सोई मेरे महद महा रस के जान वाके चरणारविंद राखूं उर धरि के।
वाही सों अलाप अरु गिलाप मेरे वाहीं सों है ऐसी मति मेरी वाके पद अनुसरि के।। २ ।।
न्यामिक न कृत्य आदि वृत्य आचरण कहूं साधन सहायक को न्यामिक न जाणिए।
न्यामिक न नेम धर्म पीठिका प्रसिद्ध सिध सोई काज आवे ऐसी मन मों न आनिए।
न्यामिक न संग सुख शीलता न ग्रन्थ पाठ भाव भगवद् नाम न्यामिक न जाणिए।
न्यामिक ढरनि श्री गोकुलेश जी की जिहि भांति ढरि आवे सोई ये प्रमानिए।। ३ ।।
साधन की साधना आराधना अन्यत्र हू की परम पवित्रता को वल न विशेश के।
गुन को न गान को न आन सन्मान को न लीला अवगाहन को भरोसौ ए लेश के।
काहू को न त्रास है न आस काहू औरन की संसार को न वल ना भरोसो एक वेष के।
महेद कृपा के बल डर नहीं एक पल निडर रहेत हैं भरोसे गोकुलेश के।। ४ ।।
जाही छिन सुरति न आवे गोकुलेश जी की ताही छिन आसुर आवेश करी ठानिये।
वल्लभ के रस विनु रुचे जाय आन रस सोई रस अनरस विष करी मानिये।
स्वरूप रस भाव विनु आन भाव आवे जब तब हीये मन अन्यासरो ही जानिये।
इहां रति मान आन उपजे जो वस्तु वुध तो तो जिय आपुने अनन्य न प्रमानिये।। ५ ।।
याही को स्वरूप रुचो ताही को न रुचे आन आन रुचो तो ए स्वरूप रुचो नाहिये।
प्रथम अनन्यता तहां है स्नेह भर स्नेह तहां रस ऐसी आवे मन मांही ये।
जानि के विलंब कित करत कुवुध कूर सूर ह्वे स्वरूप दृढ कर अवगाहिये।
गोकुल के नाथ निज हाथ दान लिये हैं ये जिय हू की ते दिस सनमुखता तो चाहिये।। ६ ।।
फल की अपेक्षा तू करत प्राण वल्लभ की सो तो आप कह्यो सनमुख होय दीजिये।
पे वह सनमुखता को स्वरूप जान्यो जात नहीं कौन भांति कैसे प्राण सनमुख कीजिये।
स्वरूप दरशन लों अयोग्य अन्तराय सब गुन गान आन लीला यामें कहा लीजिये।
इन्द्रीय सकल को निवास ए स्वरूप मांझ आरत सों सनमुख भये दान लीजिये।। ७ ।।
सुरति किये ते रोम रोम सचु पाइये सुरत के मान लिए दुःख पर हरिये।
रंचक सनमुखतामों हित करि मानि लेत हित करि सुख के समुद्र पार करिये।
मानस की प्रीत कैसी मन की न जाने वात मन की न जाने वात तासों कहा पच मरिये।
यह जिय जान समुझाऊं तोकूं वारंवार प्रीति करिये तो श्री गोकुलेश जी सों करिये।। ८ ।।
मन वृत जानिवे को हित पहिचानवे को गुन गान मानिवे को गोकुलेश निध्य है।
याके सुख विना रंच आन सुख मान लेत सोई दुःख रूप येतो अनुभव विध्य है।
यासों हित करि धरि धीर तू निडर रहे याही सों हित सोई हित निरविध्य है।
छांडि तू कलेश लेश मन में न आन कछू गोकुलेश भज फल आगे तेरे सिध्य है।। ९ ।।
नेह ते नवल गोकुलेश ढरि आवे भावे जिये नेह उर मांझ लाय धारिए।
निरहेतुक निरुपाधि साधन को रूप आदि देह गेह प्राण धन नेह पर वारिए।
रूप गुण चातुरी विवेक भाव भूषण सों दुःख न समान लागे नेह विनु जारिए।
गेही विन गेह जैसो प्राण विन देह तेसो नेह विन नातो कैसो हातो कर डारिए।। १० ।।
सत्य संकल्प अन्यथा करे न गोकुलेश स्वकीय उपदेश कहे वचन जो ये नित्य है।
लौकिक अलौकिक और कछु काहु भांति की चिंता मति करे ऐसो कह्यो जामें हित है।

ऐसी जान बूझ अनुभव करि आपु मन आप तु करत चिंता तोकूं अनुचित है।
होत है अविज्ञा आज्ञा उलंघन किये तेसो सिध्य फल ए को फल कोन गति है॥ ११॥
मन सों प्रबोधियत मनुहार करि करि मान मेरो कह्यो तू तो चिंता मति करि रे।
चिंता मणि गोकुलेश जी ने करी चिंता दूर कूर तू समज वे वचन उर धरि रे।
आपु चिंता किये चित में कलेश पावत है सोई उपरेगी ताते चिंता परि हरि रे।
प्रबल अतुल बल प्यारे प्राण वल्लभ सोई धरि धीर चित टेक ते न टरि रे॥ १२॥
उद्यम किये ते न हाथ आवे कछु बात जब तब मन आपुने कलेश मानि लीजिये।
जीव को बूरो न कबहूं विचारे जगदीश वचन ए श्री मुख कह्यो सोई मान लीजिए।
चाहत है सो करत है इच्छा आपुनी केवल तू तो है निबल बल सोई मान लीजिए।
जीव को विचार्यो न करे अरु करे आपु बल गु हित अपुनायत को पेंडो मान लीजिए॥ १३॥
प्रार्थना वर्जित कही है जगदीश हूं लों तू तो आशा जीव की करत निश दिन रे।
आशा को जो दास है सो दास सब जगत को श्री मुख ते श्लोक करि कह्या ए वचन रे।
मानस की प्रीत की प्रतीत किये आशा करि पायो और पावेगो कलेश प्रति छिन रे।
श्री गोकुलेश जी सों रति मान रस सन्मुख रिद्ध तीन लोक की महिमा ए
तू त्रणवत गिन रे॥ १४॥
उद्यम करनो कहा तोहे लौकिक को अब अलौकिक दियो तोहे सोई लिए रहि रे।
श्री मुख ते वचन प्रगट करि कह्यो जोई सोई आनि अब भूलि जिन वहि रे।
उद्यम अलभ्य वस्तु कोई करनो है जिय सुलभ तो सुगम है तू ए ही सीख लही रे।
गोकुलेश जी ने कियो लौकिक है दूर सब सोई चित आनि अब भूलि जिन वहि रे॥ १५॥
प्रबल प्रताप महाराज गोकुलेश जी को जानि उर आन फिर वहेत तू कित है।
लौकिक अलौकिक कोऊ चिंता काहू भांति करे मति मन वचन ए कह्यो भरि हित है।
आपुनी अज्ञानताते होय के अधीर अति करत विचार भूल्यो डोले जित तित है।
कौन तू हतो और कहा कियो प्रभु तोहि अब करनो है तेरी करनी सोई उचित है॥ १६॥
अति ही अधीर नहीं धीर कछु तोहे जिय कोन गति तेरी तोकों कहा ये भयो है।
करत विचार मन मन ही सों रैन दिन चैन नहीं ए को पल ऐसो सोच लह्यो है।
तो कूं तो अलौकिक लों चिंता सब दूर करि लौकिक तो तुच्छ तामें कहा वहि गयो है।
गोकुलेश जी ने तेरे हित तो सों कह्यो जो सोई द्रढ करि गहि कौन फल दयो है॥ १७॥
जे तो समुझावत हों ते तो फिर फिर सोच करत है जिय ए ते कौन हठ ठान्यो है।
टरत न नेक हू लाग्यो रहत याही मांझ या ही में तें आपुनो कहां धों हित मान्यो है।
तू तो है अज्ञान कछु लहेत न लाभ हानि भूल्यो भूल्यो स्वारथ कूं फिरत अजान्यो है।
वल्लभ वचन उलंघन होवे सिद्ध फल सोई तो होवेगो तें ए कहा करि जान्यो है॥ १८॥
तेरो विचार्यो न होत एक छिन ए हो जिय होत है सो इच्छा कछु न्यारी है।
तोहे नहीं ज्ञान हित हानि कछु जानत न जानत है इच्छा तेरी अति हित कारी है।
इच्छा ही को कियो सब मानि लेई चढाय शीष समझ मन ही मन या में सुख भारी है।
तू है इच्छा आधीन इच्छा है आधीन वल्लभ के सोई ये करत जे वल्लभ विचारी है॥ १९॥

अरे जिय सुन सावधाव होई मेरी बात मेरी सीख सुनि मैं निदान की कहेत हूं।
कठिन वियोग योग कौन समय जिवतव्य तेरो भयो है अयोग छिन एक हू लहेत हो।
अंगी विनु अंग विनु संग के सहाय विनु मन में विचार दुःख काहे को सहेत हो।
गोकुलेश प्राण धन जीवन आधार विनु निर्लजता ते विनु काज हू रहेत हो॥ २०॥
तू तो अपेक्षा करत स्वारथ के हेत मानिये न होय आवत सो इच्छा तेरी करी है।
तू तो है अज्ञान हानि आपुनी न जानत है उपकार मान प्रभु तेरी चिंता सब हरि है।
कौन तू कहां को कौन गेह आनि कहा कियो कौन दान दियो यही बात मन धरी है।
गोकुलेश जी के अनुराग सों विलस रस याही रस मांझ भांत भांत निध भरी है॥ २१॥
सुख की अपेक्षा प्रीति स्वारथ को भोग अब मनोरथ करिवे को कौन समय रह्यो है।
प्रीतम से मीतम सों प्रीत के अभाव हू में प्रान राखियत ऐसो काहू कह्यो है।
तेरो अपमान हानि आप तू न जानत है अरे प्राण निर्लज ते कौन हठ गह्यो है।
गोकुलेश जी के दरश विनु अनुदिन ते जो आपु ए तो दुःख काहे पर सह्यो है॥ २२॥
गोकुलेश जी ने ऐसी इच्छा करी है स्वकीय सहित इच्छा के निमित इच्छा प्रगट जनाय के।
ईच्छा ही के प्रबल प्रताप को प्रगट करि लौकिक अलौकिक कह्यो समुझाय के।
इच्छा बिनु पात नहीं डोलत या पोहोमीतल इच्छा जो करत सो तो कारण ही पाय के।
तू तो है अंगीकृत हित है प्रागट्य तेरो जोइ ये करत सो तो कारण ही पाय के॥ २३॥
जो तू अपराध अति सहेगो आप औरन को वाको अपराध जगदीश आप जानि है।
अपराध जानि दोष मानि कहेगो वासों तू तो तेरो दुःख जगदीश मन में न आनि है।
तेरो दुःख तेरे मन जान तू सहेन करि सहेन को दुःख प्रभु नीके करि मानि है।
सहेन ही में सुख सहेन ही में तेरो काज ह्वै है सहेन सहेन ऐसी वल्लभ की बानि है॥ २४॥
जा कलेश ते कलेश प्रति छिनु वाढत है सो कलेश पिये ते कलेश हाथ आवेगो।
सो कलेश करि जो कलेश हरी आदि हु ते लेश न कलेश रहे गोकुलेश भावेगो।
विप्रयोग रस अनुभव को कलेश करि या कलेश मांझ छिन छिन सुख पावेगो।
या कलेश में कलेश तेरो न रहेगो कछु जो तू कलेश मन मांझ नेक लावेगो॥ २५॥
आपुने अज्ञान हू ते स्वारथ सुखारथ को विनती करत हू सो विनती न मानिये।
तुम सर्वज्ञ अरु भावी वर्तमान लहो मेरो हित जानि सोई कीजिए जो जानिये।
जेई तुम जान हो बिचार करि हो मेरो ताही में है हित ऐसे जानत निदानिये।
जामें मेरो हित सोई कियो तुम आदि हू ते अबहू करत करोगे एही तुमारी रुदा बानिये॥ २६॥
प्रभु की इच्छा की रुचि जामें न एक लेश जानि के अजान जिय को लों अब फरि है।
जो ये रुचि होय तोपे सहे दोष ऐसे दिन खोहे चाहे कछु ऐसे नाहिं सरि है।
जो जो तें विचार्यो सो भयो और भांति भांति संग सेवा छूट्यो सूझ्यो सुख कोन भांति करि है।
वल्लभ सुजान करि है जामें तेरो हित तेरे हित विन नेक हू न कहूं टरी है॥ २७॥
स्वार्थ सुखारथ के स्वाद बहु भांतिन में लाग्यो मन मेरो पे न लाग्यो एक पल के।
जहां अभिराम तोकूं तहां न विराम नेक वाम अरु काम ते छुडायो छल बल के।
आपुनो बिगारवे को आपु मैं अनेक भांति उद्यम कियो पे रक्षा कीनी आप ढल के।
आप ते निरोध करि रोध के प्रबोध करि केवल स्वरूप बल राख्यो मोहि बल के॥ २८॥

आज लों अयोग्यता अलेखे आपु ही करी ते तो समुझाये अजहू ते कछू लजिरे।
विप्रयोग रस आन रस रस ही में कीनो भीनो स्वाद ही मों अजहूं प्रपंच तज रे।
मन ही मन समझाऊं मान मेरो कह्यो मरिवे कूं भयो अब तैसो साज सजि रे।
निरदोषता सों दोश आपुनो विचार मन गोकुलेश गोकुलेश गोकुलेश भजि रे॥ २६॥
प्रथम हिलग की ये डोर जोर प्राण वल्लभ सों नीके अरुझाय आछे पाछे और करिये।
तन मन प्राण वचन क्रम भावाधीन करि दर्श ही में सानि के रसीले आगे धरिये।
इन्द्रीय सकल को निरोध के प्रबोध करि प्रणय सहित उनही में अनुसरिये।
स्वरूप ही में रत्य और रत्य हू स्वरूप ही सों यामें रस वस होय आनि परिहरिये॥ ३०॥
श्री गोकुलेश जी को जस मेरे अभिराम ए प्रमाण ग्रन्थ मत मति कहो मेरे आगे को।
एई मेरे धन सरवस मेरे ए स्वरूप याको रूप लीला गुण कहो मेरे आगे को।
इनही को रस आन रस और वातन मों कान न सोहाय जिन कहो मेरे आगे को।
एई रस ही में रस आन रस फीको लागे निरस अदिठ विन देखे पाछे लागे को॥ ३१॥
प्रमेय प्रगट प्राण वल्लभ सुखद ए स्वरूप के समीप विन सुख को न लेश है।
सबे दुःखदायक न लायक सहायक को लौकिक अलौकिक ए दुःख कोहि शेष है।
सेवा सुख संग भगवदीय को आठों जाम मन विरमायवे को उलटो क्लेश है।
जस गुन कथा ग्रन्थ पाठ भाव भगवद नाम नेही के विराम कुं ए वृथा उपदेश है॥ ३२॥
अहंकार अभिमान ईरष्या तू तज सब भजि गोकुलेश मेरी सीख मान लीजिए।
पाखण्ड प्रतिष्ठा को प्रसिद्ध दोष जानत है आप अपराध कहो कौन भांति कीजिए।
यामें है यत्न सो जतन करि नीके करि हेत ही सों हेत करी और छांड दीजिए।
जामें प्राण वल्लभ रुचि रस दायक है तामें मन सान सान एही रस पीजिए॥ ३३॥
अहंकार अभिमान इर्षा कपट क्रोध पाखण्ड प्रतिष्ठा दम्भ ही में घालि रच्यो हूं।
मद और मच्छर कुकर्म क्रिया हीन लोभ द्रोह द्वेष अधम क्रिया ही में सानि सच्यो हूं।
कुबुद्धि कृतघ्नता कुटिलता आय व्यापी सब इन्द्रीय विषय ने ज्यों नचायो त्यों नच्यो हूं।
गोकुल के नाथ जो तुमारे विछोह ऐसी गति काटिये कृपाल दोष ही में आय पच्यो हूं॥ ३४॥
विगाढ ले विकातो अंग कूं लगावे रुचि कर सुचि कर माने आने न अहित हित को।
करे अपराध आप आपुनो न माने दोष दोष कहे तासों रोस करे आप चित को।
को न सरन संभारे न मरन को डर या को दीनता करे कहा कहूं जिय कृत्य को।
कृत्य हू को पक्षपात करे अहंकार लिये कार न हू न माने ए स्वभाव ऐसो चित को॥ ३५॥
एक मैं कहेत जो ये सीख मेरी मानो मीत हित की जो जानो तो आनो मन मांहिये।
स्वकीयन को शिक्षा हित कही प्राण वल्लभ जू तें दोष काहू को मन माझ आन्यो न चाहिये।
आन दोष कहे दोष उनको घटत जात अति आपकुं लगावत दोष ताते न कहाइये।
दोष काहू को कहे सो आप निरदोष जान आप दोष जाने सो विरानो कहे नाहिये॥ ३६॥
जो लों प्राण वल्लभ के दान को न ज्ञान तोहे तोलों तू अज्ञान भूल्यो फिरे जित तितकुं।
मारग की रीत ही में साधन की साध्य रहे आराधना आधुनिक किये जान चित को।
यथारथ ये प्रगट स्वरूप को जो जाने हेत त्यों त्यों हेत दान हू की जाने आपु हित को।
जाने तो तुछ करी माने सब साधन हू कूं माधुरी स्वरूप की जो चाखी होय नित कुं॥ ३७॥

मन ले मन दे मन मोहन को मन में धरी रूप करे रस पाने।
आरत सों अपनो अंग आनि के प्राण प्रभु के रस में साने।
गेह के देह के सुखारथ को सुख नेही बिना मन में न आने।
रति गोकुल नायक की रति सों या सुख को सुख कोन बखाने॥ ३८॥
जिय के सबंध मांझ हित की अपेक्षा किये मन वहेकायो पे न हाथ कछू आयो है।
विषयी कुटिल व्यभिचार मांझ हित के नेह कोन नातो जाने स्वारथ सुखायो हे।
मृग जल तृषा करी आशा मन मांझ धर धायो धाम छांड धाम वोहोत दुख पायो हे।
ताते तू समझ शुभ आनो हो विचार मन गोकुलेश भज दुख सब विसरायो हे॥ ३९॥
जामें नहीं हित को रंक अरु नेक न नेह संबंध को नातो।
प्रीत की रीत लहे न रहे मन स्वारथ मांझ फिरे ललचातो।
नेही की कान न हान गिने न डरे धर्म को कोन हू भातो।
ऐसे को संग छुडाय तत्क्षण ले आपुनो मन राखीये हातो॥ ४०॥
या जगमें जगती तल मांझ प्रवीण तेइ जेई नेह को जाने।
नेही सो नेह अनेही सो ना हित नेह जहां है तहां हित माने।
लगे नही चित अनंत कहूं बिन नेह रुचे नहीं नेक हू आने।
धीर धरे न अधीर रहे बिनु प्रेम प्रिया रस के रस पाने॥ ४१॥
सोई भगवदी भगवद नाम कहे सोई ज्ञान पूरो सूरो परम उदार है।
सोई रस लीन अरु कुलीन विद्यावान जान सोई प्रेम पान रूप भाग के अपार है।
वेद भागवत वेद गीता ग्रन्थ दोहन को जान्यो जग मांझ तिन सार हू को सार है।
गोकुलेश जी के पद रेणु विन सन्मुख रति वाकी मति सम कोन की वे अनुहार है॥ ४२॥
जामें गोकुलेश नाम गुण लीला न आवे सोई पद अक्षर कूं कोन काम गाइये।
जैसे त्रषा आतुर ते आरत समायवे को कहा सच्चुपाये मृग जल पाछे धाइये।
जाके मन वच क्रम यह पुरुषारथ ए स्वरूप सोहातो नातो तासों ताके जाइये।
एइ फल साधन अरु फल सर्वात्म को गोकुलेश नाम प्रति क्षण अब गाइये॥ ४३॥
एई नाम निर्भय अभय दान दायक है एई नाम धाम धाम रटे आठों जाम है।
एई उदित सुधाकर प्रभाकर सो सागर उजागर ए जगत अभिराम है।
एई नाम भक्ति रस बोधक निरोधक प्रबोधक प्रणय रस पुष्ट रस धाम है।
अखिल अलौकिक को सार सुख जीवन ए गोकुलेश गोकुलेश भज नीको नाम है॥ ४४॥
एक वेर चिंतन के किये चिंता दूर होय आश ना रहे जो अपेक्षा रस दान की।
अक्षर जो चार चार जुग में प्रसिद्ध सिद्ध याहू की निधि कोन कीजे या समान की।
भक्त अरु लीला जुत स्वरूप ए अक्षर यामें गति मिलि वियोग रस पान की।
गोकुलेश यह नाम पूरण सकल काम मान मेरो कह्यो मैं कहेत हों निदान की॥ ४५॥
गोकुलेश गोकुलेश अह नाम रसना तू आठों जाम अंतर में ही रटि रे।
तर हू ते तर पटतर नाहीं आन कोऊ जाने कौन कृपा हू ते आयो तेरे वट रे।
स्वरूप सहित उच्चार तू याही भांति कर स्वास आवागमन में ऐसे दिन कटि रे।
समय विचार सावधान व्हे सुरति करि मन के सुभाव को तू छांड खट पटि रे॥ ४६॥
पूरण प्रागट पुरुषोत्तम प्रमेय जैसो तैसो निज नाम स्वप्रताप के उमंग में।

जैसे दिन मणी आपु किरण सहित राजे प्रगट उद्योत जोत्य आभा जोत रंग में।
स्वरूप प्रभाव लीला गुन कृत वाछल्य के नाम धरे प्रगट ए प्रमाण करे अंग में।
ए काहू नाहीं कह्यो धरयो नाहीं नाम ए गोकुलेश आपु लिये आये संग में॥ ४७ ॥
पुष्टि पुष्टि मारग सो प्रागट दिशा प्रगट प्रमेय याही स्वरूप सों जहां रस को विलास है।
संभाषण इक्षण परस नित हाव भाव रस ही परम नित ही नवीन हू हुल्लास है।
साधन स्वरूप अरु फल ए स्वरूप जहां विरह संजोग भोग अधरामृत आश है।
एइ शुद्ध पुष्ट आन पूजा मर्यादा सब श्री मुख ते आप कही वात ए प्रकाश है॥ ४८ ॥
नेह निरविधि निरहेतुक निरन्तर तहां साधन रहित जहां स्वरूप सोहायो है।
आरत असही उर आतप सहित अंग स्वारथ न लेश सुख आपुनो न भायो है।
वाछल्य विविध रस वल्लभ के हित मांझ हेतु न विचारे कछू यामे हेतु पायो है।
एइ शुध पुष्ट आन पूजा मर्यादा सब ग्रन्थ मत और कहो मेरे मन नायो है॥ ४९ ॥
आरत असही प्राण वल्लभ को देखन की देखे हू न चैन नैन में ही स्वरूप पाग्यो है।
जहां जहां पलक पसारूं तहां तहां प्राण प्रिय भाव उद्वोध रस अनुराग्यो है।
जाही रस आरत को स्वरूप न कह्यो परत अक्षर में भावैपन मांझ वह लाग्यो है।
एइ शुध आन पूजा मर्यादा सब ग्रन्थ मत और कहो मेरे मन त्याग्यो है॥ ५० ॥
नख हू ते शिख लों शृंगार सुख रूप कर अंग उपयोगी भोगी हित आगे धरिये।
अंतर मनोरथ स्वरूप सन्मुख कर भाव के तरंग उपजाय अंक भरिये।
हठ कर मान कर प्रति अंग दान कर एइ रस पान कर रस वस करिये।
विनय दीनता सोहाग मद सर्वात्मना एइ रचना सों रचि आन परि हरिये॥ ५१ ॥
रुचि हृदय कमल कर भाव भर आगे धर प्रार्थना कर प्राण वल्लभ सों दान की।
आन उपयोग ए शरीर उपयोग दीजे रस जोग कीजे लाज गहे निज वान की।
एइ सेवा विन सेवा रहित जो निश दिन जात छिन छिन कहा कहूं मेरी महा हानि की।
तुम हो प्रवीण दीन जान अपनाइये जु मान लीजे आपुते ए विनती निदान की॥ ५२ ॥
काहू सों हंसत विलसत रस काहू सों है कृपा की द्रष्टि करी मुसिक्यात है।
काहूं सों वसीठ नैन काहू सों रचित वैन काहू उपजावे मैन सैनन में चात है।
काहू को अधर पान काहू को चुंबन दान काहू को अंक भरि परसत सब गात है।
काहू रस कर वस होत आपु काहु साथ गोकुल के नाथ काहू देखे ललचात है॥ ५३ ॥
एक कुच कर पद अंबुज पे लोटत है एक न को कुच कर पद अंबुज गह्यो है।
एक विपरीत रस आसन रचि के रति करत विनोद अति जामें रस रह्यो है।
एक वीरा श्री मुख में देत चोंप कर चुंबन करत अति जैसे मन चह्यो है।
एक पंखा करत धरत अभिलाख मन एकन सों मुसिकाय प्रभु कछू कह्यो है॥ ५४ ॥
नैन मैन भरे सतराये सन्मुख करी भ्रकुटि मरोर में करोर दीजियत है।
वरुनि सुधार झिझकार दे वदन मोर अधर फरकनी मों रस पीजियत है।
भामिनी के भाव देखे रीझे प्राण वल्लभ जू मन वस करि रस वस कीजियत है।
एइ उभय रस अविलोक दास दासी जन करी अभिलाख रस ही मों भीजियत है॥ ५५ ॥

उत्तम मध्यम अधमादि भगवदीय हू श्रष्टि के समान अंगीकार भेद कियो है।
जोग्यता वरण अधिकार भेद भाव भेद रस भेद भेद जुत तैसो दान दियो है।
जेई जेसी भांति को सो तेसी भांति पर्यो आन और न सुहाय वाको वेइ मान लियो है।
जिन चाखी माधुरी मधुर श्री गोकुलेश जो की रूप अरुझानो और वेई रस पीयो है।। ५६ ।।
स्वकीय समाज को शृंगार रस सन्मुख कर पूछो प्राण वल्लभ प्रणय रस भरि के।
कह्यो तुमारे पुरुषार्थ कहा हें कह्यो रावरे चरण यह सुनि कह्यो प्रेम ढरि के।
तुम तो हो अंग मेरे आंख नाक मुख उदर चरण निज हृदय पे जो धरि के।
निज पुरुषोत्तमता और निज पुष्ट रस ज्ञान स्वकीय कुं कर्यो प्रगट करि के।। ५७ ।।

श्री कृष्णा दासी जी

श्री दामोदर दासी जी